नईदुनिया

भोपाल, 5 जून 2026

संपादकीय

पर्यावरण बचाना अभियान नहीं, मानव अस्तित्व की निर्णायक लड़ाई

विश्व पर्यावरण दिवस पर वृक्षारोपण के आयोजन, संगोष्ठियों के मंच और सोशल मीडिया के संकल्प अब रस्म–अदायगी बन चुके हैं। समय आ गया है कि हम स्वीकार करें कि पर्यावरण संरक्षण कोई वार्षिक अभियान नहीं, बल्कि क्षण–प्रतिक्षण लड़ी जाने वाली अस्तित्व की लड़ाई है। संयुक्त राष्ट्र की इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज की छठी आकलन रिपोर्ट स्पष्ट करती है कि 1.5 डिग्री सेल्सियस तापमान वृद्धि की लक्ष्मण रेखा हम 2035 तक पार कर जाएंगे। भारत जैसे घनी आबादी वाले देश के लिए यह कोई आंकड़ा नहीं, बल्कि आपातकाल की घंटी है।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के आंकड़े बताते हैं कि भारत प्रतिदिन 26,000 टन प्लास्टिक कचरा पैदा करता है। इसमें से 40 प्रतिशत न तो संग्रहित होता है और न ही पुनर्चक्रित। गंगा–ब्रह्मपुत्र–मेघना बेसिन विश्व के सबसे प्रदूषित नदी तंत्रों में शामिल है। हम नमामि गंगे का बजट बढ़ाते हैं, पर श्रद्धालु स्वयं नदियों में प्लास्टिक और पॉलिथीन प्रवाहित कर देते हैं। यह लड़ाई नदी में नहीं, मानसिकता में हारी जा रही है।

लैंसेट काउंटडाउन 2025 की रिपोर्ट के अनुसार वायु प्रदूषण से भारत में प्रतिवर्ष 16.7 लाख असामयिक मौतें हो रही हैं। दिल्ली का एक्यूआई 450 पार करना अब ब्रेकिंग न्यूज नहीं, सामान्य स्थिति बनती जा रही है। कारण ज्ञात हैं—पराली, कोयला आधारित विद्युत संयंत्र, निर्माण धूल और करोड़ों वाहनों का धुआं। समाधान भी ज्ञात हैं, लेकिन राजनीतिक और आर्थिक हितों के आगे जन–स्वास्थ्य गौण हो गया है।

नीति आयोग का कम्पोजिट वाटर मैनेजमेंट इंडेक्स चेतावनी देता है कि 2030 तक देश के 21 बड़े शहरों में भूजल लगभग समाप्त हो सकता है। चेन्नई और बेंगलुरु इस संकट की झलक देख चुके हैं। एक ओर हर वर्ष बाढ़ से भारी आर्थिक क्षति होती है, दूसरी ओर करोड़ों नागरिक पानी की किल्लत झेल रहे हैं। हमने जल को ईश्वर का वरदान माना, पर राष्ट्रीय संपत्ति की तरह उसका संरक्षण नहीं किया। विकास बनाम पर्यावरण की बहस में हमने अक्सर विकास को प्राथमिकता दी है। फॉरेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया के अनुसार 2021 से 2023 के बीच 1,03,616 हेक्टेयर वन क्षेत्र नष्ट हुआ। जोशीमठ का धंसना और केरल की भूस्खलन त्रासदियां संकेत देती हैं कि प्रकृति अनापत्ति प्रमाणपत्र नहीं देती।

यदि वर्तमान उत्सर्जन दर बनी रही तो 2050 का भारत गंभीर संकटों का सामना करेगा। कृषि उत्पादन में गिरावट, खाद्य असुरक्षा, जलवायु विस्थापन और आर्थिक क्षति इसके प्रमुख परिणाम होंगे। विश्व बैंक के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण भारत में करोड़ों लोग आंतरिक रूप से विस्थापित हो सकते हैं। यह केवल पलायन नहीं, बल्कि सभ्यता का स्थानांतरण होगा।

अब समय बैठकों और प्रतीकात्मक आयोजनों का नहीं, ठोस बदलाव का है। सिंगल–यूज प्लास्टिक का बहिष्कार, सार्वजनिक परिवहन का उपयोग, ऊर्जा की बचत और जल संरक्षण व्यक्तिगत स्तर पर आवश्यक कदम हैं। वहीं सरकार को पर्यावरण प्रभाव आकलन को औपचारिकता नहीं, राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्न के रूप में देखना होगा। पर्यावरण अपराधों पर कठोर दंड और जलवायु शिक्षा को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना समय की मांग है।

पर्यावरण बचाना किसी संगठन या अभियान का एजेंडा नहीं, मानव जाति के अस्तित्व का प्रश्न है। यदि 5 जून केवल पौधारोपण तक सीमित रह गया, तो इतिहास हमें उस पीढ़ी के रूप में याद करेगा जिसने सब कुछ जानते हुए भी कुछ नहीं किया। अब जागरूकता का नहीं, अस्तित्व संग्राम का समय है, क्योंकि लड़ाई आज की है, कल केवल उसके परिणाम होंगे।

आजकल

कमी नहीं, फिर भी 45 दिन का इंतजार

सरकार का दावा है कि रसोई गैस की कोई कमी नहीं है, लेकिन हकीकत इसके बिल्कुल विपरीत दिखाई देती है। गांवों में उपभोक्ता 45 दिन और शहरों में 25 दिन तक सिलेंडर का इंतजार कर रहे हैं। नया गैस कनेक्शन प्राप्त करना भी किसी सरकारी लॉटरी से कम नहीं रह गया है। हाईकोर्ट की फटकार के बावजूद व्यवस्था यह मानने को तैयार नहीं कि समस्या गंभीर है।

सवाल यह है कि यदि गोदामों में पर्याप्त स्टॉक मौजूद है तो घरों की रसोई खाली क्यों हैं? उपभोक्ताओं को बताया जाता है कि स्टॉक नहीं है, जबकि दूसरी ओर वही सिलेंडर अधिक कीमत पर आसानी से उपलब्ध हो जाता है। 850 रुपये का सिलेंडर 1300 रुपये तक बेचे जाने की शिकायतें आम हैं। यह कमी नहीं, बल्कि वितरण व्यवस्था की विफलता और ब्लैक मार्केटिंग का संकेत है।

समस्या के पीछे एजेंसियों का एकाधिकार, कमजोर परिवहन व्यवस्था और नए कनेक्शनों की जटिल प्रक्रिया जैसे कई कारण हैं। कई स्थानों पर केवाईसी, सत्यापन और आवंटन के नाम पर उपभोक्ताओं को महीनों तक भटकाया जाता है। वहीं कमर्शियल सिलेंडरों पर अधिक कमीशन मिलने के कारण घरेलू उपभोक्ता उपेक्षा का शिकार होते हैं। उज्ज्वला योजना का उद्देश्य स्वच्छ ईंधन को घर–घर पहुंचाना था, लेकिन अनियमित आपूर्ति और लंबी प्रतीक्षा ने इसके प्रभाव को कमजोर किया है। गांवों में कई परिवार फिर से लकड़ी और कंडों पर खाना बनाने को मजबूर हो रहे हैं।

अब समय केवल दावों का नहीं, जवाबदेही का है। गैस डिलीवरी की समयबद्ध गारंटी तय हो, देरी पर एजेंसियों पर जुर्माना लगे और ब्लैक मार्केटिंग पर कठोर कार्रवाई की जाए। चूल्हा राजनीति नहीं समझता, उसे केवल ईंधन चाहिए। यदि आम आदमी को रसोई गैस के लिए हफ्तों इंतजार करना पड़े, तो यह केवल आपूर्ति का नहीं, शासन की विश्वसनीयता का भी संकट है।

सीमा विवाद पर नेपाल का बदलता दृष्टिकोण

'रोटी-बेटी' के रिश्ते से 'नक्शा-नीति' तक का सफर

जोधपुर में रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह का बयान है कि अब नेपाल भारत की भूमि को अतिक्रमण के नजरिए से नहीं देखता। चीन के दबाव से निकलता काठमांडू और संबंधों में लौटती नई गर्माहट, दोनों देशों के रिश्तों में सकारात्मक बदलाव का संकेत हैं।

भारत और नेपाल के बीच रोटी–बेटी का रिश्ता सदियों पुराना है। खुली सीमा, समान संस्कृति, धर्म और जनभावनाओं ने दोनों देशों को हमेशा जोड़े रखा है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में यह रिश्ता सीमा विवाद की भेंट चढ़ गया था। कालापानी, लिपुलेख और लिम्पियाधुरा को लेकर नेपाल ने नया नक्शा जारी कर भारत की भूमि पर दावा ठोक दिया था। चीन के प्रभाव में आकर काठमांडू ने 2020 में संविधान संशोधन कर इन क्षेत्रों को अपना बताया। पर अब परिस्थितियां बदलती दिखाई दे रही हैं। जोधपुर में रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने कहा कि अब नेपाल भारत को अतिक्रमणकारी के रूप में नहीं देखता। यह बयान केवल शब्द नहीं, बल्कि दोनों देशों के बीच जमी बर्फ के पिघलने का संकेत है।

मई 2020 में भारत ने धारचूला–लिपुलेख सड़क का उद्घाटन किया था। नेपाल ने इस पर आपत्ति जताई और जवाब में नया राजनीतिक नक्शा जारी कर दिया। इसमें कालापानी, लिपुलेख और लिम्पियाधुरा सहित लगभग 335 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को नेपाल का हिस्सा दिखाया गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली की सरकार ने इसे संविधान का हिस्सा भी बना दिया। भारत ने इसे एकतरफा और कृत्रिम विस्तार बताया। इसके बाद दोनों देशों के बीच संवाद लगभग ठप हो गया। चीन ने भी इस विवाद को हवा देने का प्रयास किया। बीआरआई परियोजनाओं, पोखरा एयरपोर्ट के कर्ज और राजनीतिक दखल के जरिए नेपाल को भारत के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश हुई। लेकिन काठमांडू को जल्द ही समझ आ गया कि चीन का कर्ज जाल श्रीलंका और पाकिस्तान जैसी परिस्थितियां पैदा कर सकता है।

जोधपुर में आयोजित एक कार्यक्रम में रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने नेपाल के बदले रुख पर मुहर लगाई। उन्होंने कहा कि पिछले कुछ वर्षों में भारत–नेपाल संबंधों में कई उतार–चढ़ाव आए, लेकिन अब नेपाल की सरकार और जनता का दृष्टिकोण बदल रहा है। वे भारत को दोस्त मानते हैं, अतिक्रमणकारी नहीं। यह बयान हल्के में लेने योग्य नहीं है। यह खुफिया एजेंसियों, राजनयिक चैनलों और बैकडोर कूटनीति से मिले संकेतों का परिणाम माना जा सकता है। नेपाल के प्रधानमंत्री पुष्प कमल दहल 'प्रचंड' ने भी अपनी भारत यात्रा के दौरान सीमा विवाद को ऐतिहासिक मुद्दा बताते हुए उसके महत्व को कम करने का प्रयास किया था। अब नेपाली सेना प्रमुख का भारत दौरा भी संबंधों में सुधार का संकेत है।

नेपाल के दृष्टिकोण में बदलाव के पीछे कई कारण हैं। पहला, चीन का वास्तविक चेहरा सामने आना। पोखरा इंटरनेशनल एयरपोर्ट चीन ने बनाया, लेकिन वहां अपेक्षित संख्या में बड़े विमान नहीं उतर पा रहे हैं। भारी कर्ज के बावजूद आर्थिक लाभ सीमित रहा है। बीआरआई परियोजनाओं को लेकर भी असंतोष बढ़ा है। दूसरा, भारत के साथ नेपाल के गहरे आर्थिक और सामाजिक संबंध हैं। दोनों देशों के बीच लगभग 16,000 करोड़ रुपये का व्यापार होता है और लाखों नेपाली नागरिक भारत में रोजगार पाते हैं। तीसरा, भारत की 'नेबरहुड फर्स्ट' नीति ने विश्वास बढ़ाया है। कोविड काल में वैक्सीन सहायता, भूकंप के दौरान मदद, पेट्रोलियम पाइपलाइन, बिजली ट्रांसमिशन लाइन और रेल कनेक्टिविटी जैसी परियोजनाओं ने संबंधों को मजबूती दी है। चौथा, नेपाल की घरेलू राजनीति भी अब भारत–विरोध की बजाय विकास और स्थिरता पर अधिक केंद्रित दिखाई देती है।

कालापानी विवाद का मूल प्रश्न काली नदी के वास्तविक उद्गम को लेकर है। 1816 की सुगौली संधि में काली नदी को सीमा माना गया था। भारत और नेपाल इस नदी के स्रोत की अलग–अलग व्याख्या करते हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि संयुक्त नदी आयोग और आधुनिक सैटेलाइट सर्वेक्षण के माध्यम से इस विवाद का समाधान निकाला जा सकता है। उल्लेखनीय है कि भारत–नेपाल सीमा का लगभग 90 प्रतिशत हिस्सा निर्विवाद है और विवाद केवल सीमित क्षेत्र तक सीमित है।

आगे बढ़ने के लिए विदेश सचिव स्तर की वार्ताओं को फिर से सक्रिय करना, सीमा तंत्र की बैठकों को नियमित बनाना, लोगों के बीच संपर्क बढ़ाना, सुरक्षा सहयोग मजबूत करना और नेपाल को आर्थिक विकल्प उपलब्ध कराना आवश्यक होगा। इससे चीन पर उसकी निर्भरता कम हो सकती है।

नेपाल का बदला हुआ रुख भारत की कूटनीतिक सफलता के रूप में देखा जा सकता है। यह संकेत देता है कि पड़ोसी देशों के साथ संवाद, सहयोग और विकास आधारित नीति दीर्घकाल में अधिक प्रभावी साबित होती है।

फिर भी सतर्कता जरूरी है, क्योंकि नेपाल की आंतरिक राजनीति और चीन की सक्रियता भविष्य में परिस्थितियों को प्रभावित कर सकती है। भारत को बड़े भाई की छवि से आगे बढ़कर समान भागीदार की भूमिका निभानी होगी। नेपाल की संप्रभुता का सम्मान करते हुए विकास और विश्वास की साझेदारी ही स्थायी समाधान का मार्ग है। आखिरकार, रोटी–बेटी का रिश्ता किसी भी नक्शे से बड़ा होता है और यही संबंध दोनों देशों के भविष्य की सबसे मजबूत नींव है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

समंदर ने उगला कचरा, गोवा ने जगाई चेतना: पर्यावरण अब इवेंट नहीं, **आदत बनाएँ**

सीमा नागर

टीम का श्रम–साधना संदेश है कि यदि विदेशों जैसे साफ तट चाहिए तो 5 जून नहीं, 365 दिन का संकल्प चाहिए। अरब सागर की लहरें इन दिनों गोवा के तटों पर सिर्फ सीप–शंख नहीं, मानव की लापरवाही का कचरा–पुराण भी उगल रही हैं। कोलवा, बागा, मीरामार से लेकर पालोलेम तक प्लास्टिक की बोतलें, चिप्स के पैकेट, शराब की टूटी बोतलें और थर्माकोल की प्लेटें समंदर का सीना छलनी कर रही हैं। परंतु इसी काले परिदृश्य में आशा की एक किरण चमक रही है। सामाजिक कार्यकर्ता सीमा नागर और उनकी 120 स्वयंसेवकों की टीम ने 'क्लीन कोस्ट, ग्रीन गोवा' अभियान के तहत पिछले 8 महीनों में 18 समुद्री तटों से 94 टन कचरा निकाला है। यह अभियान विश्व पर्यावरण दिवस की रस्म–अदायगी नहीं, मानव अस्तित्व बचाने की जमीनी लड़ाई है।

विदेशी तट चमकते क्यों हैं? क्योंकि वहां नागरिक उन्हें चमकाते हैं। नॉर्वे के ओस्लो फ्योर्ड, जापान के ओकिनावा और ऑस्ट्रेलिया के बॉन्डी बीच पर पानी इतना साफ है कि तलहटी के पत्थर तक गिने जा सकते हैं। कारण यह है कि वहां सरकार अकेली नहीं, समाज भी साथ खड़ा है। संडे बीच क्लीनिंग वहां के नागरिकों का वीकेंड रिचुअल है। सिंगापुर में समुद्र तट पर कचरा फेंकने पर 2,000 डॉलर तक का जुर्माना है, लेकिन उससे भी बड़ी बात यह है कि वहां का बच्चा–बच्चा जानता है कि मेरा कचरा मेरी जिम्मेदारी है। नतीजतन पर्यटन बढ़ता है, समुद्री जीव बचते हैं और देश की जीडीपी में ब्लू इकोनॉमी का हिस्सा 7 प्रतिशत तक पहुंचता है।

केंद्रीय समुद्री मत्स्य अनुसंधान संस्थान के अनुसार भारत के 7,500 किलोमीटर लंबे समुद्र तट पर प्रतिवर्ष 15,343 टन प्लास्टिक कचरा पहुंचता है। चेन्नई का मरीना बीच, मुंबई का जुहू-वर्सोवा, ओडिशा का पुरी और गुजरात का मांडवी–हर जगह मानसून के बाद समंदर कचरा वापस कर देता है। हम देवता मानकर नारियल चढ़ाते हैं और उसी में पॉलिथीन लपेटकर विसर्जित कर देते हैं। श्रद्धा और प्रदूषण का यह घालमेल आखिर कब रुकेगा? गोवा और मुंबई सहित अनेक सामाजिक संगठनों ने पर्यावरण बचाओ अभियान चलाए हैं। वर्सोवा बीच क्लीनअप के अफरोज शाह ने 2015 से अब तक 21,000 टन कचरा हटाया है।

इसके उलट भारत का सच अलग है। केंद्रीय समुद्री मत्स्य अनुसंधान संस्थान के अनुसार भारत के 7,500 किलोमीटर लंबे समुद्र तट पर प्रतिवर्ष 15,343 टन प्लास्टिक कचरा पहुंचता है। चेन्नई का मरीना बीच, मुंबई का जुहू–वर्सोवा, ओडिशा का पुरी और गुजरात का मांडवी—हर जगह मानसून के बाद समंदर कचरा वापस कर देता है। हम देवता मानकर नारियल चढ़ाते हैं और उसी में पॉलिथीन लपेटकर विसर्जित कर देते हैं। श्रद्धा और प्रदूषण का यह घालमेल आखिर कब रुकेगा?

गोवा और मुंबई सहित अनेक सामाजिक संगठनों ने पर्यावरण बचाओ अभियान चलाए हैं। वर्सोवा बीच क्लीनअप के अफरोज शाह ने 2015 से अब तक 21,000 टन कचरा हटाया है। संयुक्त राष्ट्र ने उन्हें 'चैंपियन ऑफ द अर्थ' सम्मान से नवाजा। उनके साथ 10 साल की बच्ची से लेकर 70 साल के बुजुर्ग तक जुड़े। नतीजा यह हुआ कि वर्सोवा तट पर 20 साल बाद ऑलिव रिडले कछुए लौटे। यह किसी सरकारी योजना का नहीं, जनभागीदारी का चमत्कार है।

गोवा में सीमा नागर की टीम ने तीन–स्तरीय मॉडल अपनाया है। पहला, श्रमदान—प्रत्येक रविवार दो घंटे तट सफाई। दूसरा, जन–जागरूकता—पर्यटक भी इस अभियान से जुड़ रहे हैं। 'सेल्फी विद सी' की जगह 'सेल्फी विद सैक' का चलन बढ़ रहा है। तटीय झोंपड़ियों, शैक मालिकों और मछुआरों को प्लास्टिक के विकल्प दिए गए हैं। पत्तल–दोने वापस आए हैं और स्टील स्ट्रॉ का उपयोग बढ़ा है। तीसरा, निगरानी—ड्रोन से मैपिंग, मासिक कचरा ऑडिट और पंचायत को रिपोर्ट। जिस शैक से कचरा मिला, उसका लाइसेंस सात दिन के लिए निलंबित करने की व्यवस्था बनाई गई है। आठ महीनों में कोलवा बीच पर माइक्रोप्लास्टिक में 40 प्रतिशत कमी और केकड़ों की संख्या में 22 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई। सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि स्थानीय बच्चों ने 'बीच गार्जियन क्लब' बनाया और अब वे स्वयं पर्यटकों को कचरा डस्टबिन में डालने की सलाह देते हैं।

समस्या की जड़ 5 जून का 'सेल्फी सिंड्रोम' है। तमिलनाडु से गुजरात और ओडिशा से महाराष्ट्र तक हर राज्य में विश्व पर्यावरण दिवस पर तट सफाई होती है। अधिकारी, नेता और अभिनेता आते हैं, दो घंटे झाड़ू लगाते हैं, कैमरे चमकते हैं और शाम होते–होते सब कुछ पहले जैसा हो जाता है। कारण यह है कि हमने पर्यावरण को इवेंट मैनेजमेंट बना दिया है, बिहेवियर मैनेजमेंट नहीं।

समाधान केवल कानून नहीं, जन–आदतों में बदलाव है। सिंगल–यूज प्लास्टिक पर प्रतिबंध लागू है, लेकिन पॉलिथीन अब भी खुलेआम इस्तेमाल हो रही है। पंचायतों और नगर निगमों को 'जीरो वेस्ट बीच' का लक्ष्य दिया जाना चाहिए। स्कूलों में 'एक छात्र–एक तट' जैसी योजनाएं पर्यावरण को संस्कार का हिस्सा बना सकती हैं। पर्यटन को भी जिम्मेदारी से जोड़ना होगा। यदि पर्यटक अपने पीछे कचरा छोड़ने के बजाय सफाई में भागीदार बनें तो तटों की तस्वीर बदल सकती है।

पर्यावरण बचाना अभियान नहीं, आचरण है। जिस दिन भारत का बच्चा समंदर को डस्टबिन नहीं, दोस्त समझने लगेगा, उसी दिन वास्तविक परिवर्तन की नींव पड़ेगी। तट साफ होंगे तो पर्यटन बढ़ेगा, मछलियां बढ़ेंगी, अर्थव्यवस्था मजबूत होगी और मानवता सुरक्षित रहेगी। आखिर समंदर बीमार होगा तो किनारे पर बसा इंसान स्वस्थ कैसे रहेगा? लड़ाई कचरे से कम और काहिली से ज्यादा है, और यह लड़ाई हम सबको मिलकर लड़नी होगी।

ताले में बंद मकान : 15 साल में 90 लाख घरों में पसरा सन्नाटा

मध्यप्रदेश में 1.49 करोड़ से बढ़कर 2.40 करोड़ हुए मकान, पर लाखों आवास बंद मिले। पलायन, बेरोजगारी और शहरीकरण की नई तस्वीर सामने आ रही है।

जनगणना सिर्फ लोगों की गिनती नहीं होती, बल्कि समाज की नब्ज टटोलने का सबसे बड़ा जरिया होती है। 2027 की जनगणना से पहले जारी हुए हाउस लिस्टिंग के शुरुआती आंकड़े मध्यप्रदेश के लिए चौंकाने वाले हैं। 2011 में प्रदेश में 1.49 करोड़ मकान थे। 2027 तक इनके 2.40 करोड़ पहुंचने का अनुमान है। यानी 15 साल में लगभग 90 लाख नए मकान बने। यह विकास का संकेत हो सकता है, लेकिन इसी डेटा का दूसरा पहलू चिंता बढ़ाता है। जबलपुर, इंदौर, भोपाल और छतरपुर जैसे शहरों में हजारों मकान बंद मिले। ताले लटके हैं, खिड़कियां बंद हैं और आंगन में सन्नाटा पसरा है। सवाल उठता है कि ये मकान खाली क्यों हैं और लोग कहां चले गए?

हाउस लिस्टिंग का काम एक सप्ताह में पूरा हुआ। जनगणना अधिकारियों ने घर–घर जाकर मकानों की गणना की। मोटे तौर पर चार श्रेणियां बनाई गईं–रहने योग्य मकान, खाली मकान, बंद मकान और अन्य। 2011 की जनगणना में प्रदेश में 0.4 प्रतिशत मकान 'बंद' श्रेणी में थे। 2026 के शुरुआती आंकड़ों में यह अनुपात बढ़कर 0.8 प्रतिशत हो गया है। संख्या के हिसाब से देखें तो लाखों मकान बंद पड़े हैं। जबलपुर में सबसे अधिक 4 हजार से ज्यादा घरों पर ताले मिले। दूसरे नंबर पर इंदौर, भोपाल और छतरपुर रहे, जहां 2500 से 3000 मकान बंद पाए गए। अधिकारियों का मानना है कि अंतिम आंकड़ों में यह संख्या और बढ़ सकती है। 15 साल में मकानों की संख्या 90 लाख बढ़ी, लेकिन बंद मकानों का अनुपात भी लगभग दोगुना हो गया।

जनगणना 2027 के शुरुआती आंकड़ों में चौंकाने वाला खुलासा

इन तालों के पीछे कई कारण दिखाई देते हैं। पहला कारण पलायन है। बुंदेलखंड, बघेलखंड और महाकौशल के गांवों से बड़े पैमाने पर पलायन हुआ है। सूखा, बेरोजगारी और खेती में घटती आय के कारण परिवार इंदौर, सूरत, दिल्ली और मुंबई जैसे शहरों में रोजगार की तलाश में चले गए।

इन तालों के पीछे कई कारण दिखाई देते हैं। पहला कारण पलायन है। बुंदेलखंड, बघेलखंड और महाकौशल के गांवों से बड़े पैमाने पर पलायन हुआ है। सूखा, बेरोजगारी और खेती में घटती आय के कारण परिवार इंदौर, सूरत, दिल्ली और मुंबई जैसे शहरों में रोजगार की तलाश में चले गए। गांवों में पुश्तैनी मकानों पर ताले लग गए। लोग त्योहारों पर लौटते हैं और फिर वापस चले जाते हैं। छतरपुर और टीकमगढ़ के कई गांवों की पहचान अब बुजुर्गों के गांव के रूप में होने लगी है। दूसरा कारण शहरीकरण का बदलता स्वरूप है। इंदौर और भोपाल जैसे शहरों में निवेश के उद्देश्य से मकान खरीदे गए। बिल्डरों ने फ्लैट बेच दिए, लेकिन खरीदार वहां रहने नहीं आए। वे अन्य शहरों में नौकरी करते हैं। ऐसे मकान निवेश या दूसरे घर के रूप में बंद पड़े हैं। जबलपुर में भी नर्मदा किनारे कई फ्लैट इसी स्थिति में हैं।

तीसरा कारण कोरोना काल के बाद रिवर्स माइग्रेशन का असफल होना है। महामारी के दौरान गांव लौटे लोग फिर शहरों की ओर चले गए। मनरेगा और स्वरोजगार योजनाएं उन्हें स्थायी रूप से रोक नहीं सकीं। गांवों में स्कूल, अस्पताल और रोजगार के सीमित अवसर हैं, जबकि शहरों में झुग्गी में रहने के बावजूद आय का साधन उपलब्ध है। परिणामस्वरूप मकान बने, लेकिन उनमें जीवन नहीं बस पाया।

बंद मकान केवल ईंट और सीमेंट की संरचनाएं नहीं हैं, बल्कि सामाजिक बदलाव और चुनौतियों का संकेत भी हैं। गांवों में बंद घर अपराध और असामाजिक गतिविधियों का केंद्र बन सकते हैं। शहरों में खाली फ्लैट रखरखाव के अभाव में जर्जर हो रहे हैं। सबसे बड़ी चिंता सामाजिक ताने–बाने के कमजोर होने की है। मोहल्लों की रौनक घट रही है, त्योहारों की चहल–पहल कम हो रही है और बुजुर्ग अकेले पड़ते जा रहे हैं। 2011 में प्रदेश में 1.49 करोड़ आवास थे और अब 2.40 करोड़ हैं, लेकिन सवाल यह है कि क्या हमने घर बनाए हैं या केवल मकान?

ये आंकड़े नीति–निर्माताओं के लिए चेतावनी हैं। केवल मकान निर्माण को विकास का पैमाना नहीं माना जा सकता। रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्थानीय अवसरों का विस्तार जरूरी है। यदि बुंदेलखंड जैसे क्षेत्रों में उद्योग नहीं होंगे तो युवा पलायन करते रहेंगे। शहरों में किफायती किराये की व्यवस्था मजबूत नहीं होगी तो आवासीय असंतुलन बना रहेगा। पंचायतों और ग्राम सभाओं की सक्रियता भी तब प्रभावित होती है जब बड़ी आबादी गांव छोड़ देती है। जनगणना 2026 डिजिटल स्वरूप में होगी और मोबाइल ऐप के माध्यम से रियल–टाइम डेटा उपलब्ध होगा। ऐसे में बंद मकानों का आंकड़ा विशेष महत्व रखेगा। इससे यह समझने में मदद मिलेगी कि कौन से क्षेत्र तेजी से खाली हो रहे हैं और किन शहरों में निवेश आधारित आवास अधिक हैं। इन आंकड़ों के आधार पर भविष्य की नीतियां तय होंगी।

90 लाख नए मकान बनना निश्चित रूप से उपलब्धि है, लेकिन बड़ी संख्या में मकानों पर ताले लगना चिंता का विषय भी है। यह आंकड़ा बताता है कि विकास केवल कंक्रीट का नहीं, बल्कि सामाजिक जुड़ाव और अवसरों का भी होना चाहिए। जब तक गांवों में अस्पताल, स्कूल और रोजगार उपलब्ध नहीं होंगे, तब तक पलायन का सिलसिला जारी रहेगा और ताले बढ़ते रहेंगे। जनगणना 2026 का यह शुरुआती डेटा एक आईना है। इसमें हमें यह देखना होगा कि हम केवल मकानों की संख्या बढ़ा रहे हैं या वास्तव में घरों को आबाद भी रख पा रहे हैं। क्योंकि मकान दीवारों से बनता है, लेकिन घर लोगों से बसता है। जब लोग ही अपने घर छोड़ दें तो सबसे आलीशान मकान भी सूना और अधूरा लगता है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)